पुरातत्व

राष्ट्रीय समुद्रविज्ञान संस्थान, गोवा के समुद्री पुरातत्व केन्द्र में कार्यरत युवा पुरातत्वविद्
डॉ. अनिरुद्ध सिंह गौर सूरों और थानेसर के पुरातात्विक उत्खनन के सहभागी
रहे हैं। समुद्री पुरातत्व के द्वारका, पुम्पुहार तथा लक्षदीव आदि अभियानों में
विशेष भूमिका तथा गुजरात के संदर्भ में सिंधु सभ्यता की नौवहन
परंपरा पर आपकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'हड़प्पन मैरीटाइम
लेगसीज ऑफ गुजरात' सद्यः प्रकाशित

प्राचीन भारत की मृद्पात्र परंपराएं

अनिरुद्ध सिंह गौर

पुरातत्व में मृद्पात्रों का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि मृद्पात्र कालांतर में भी सुरक्षित बने रहते हैं। मृद्पात्र किसी सभ्यता के कालक्रम को निर्धारित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरणस्वरूप हड़प्पा सभ्यता के विस्तार की पहचान मृद्पात्रों के आधार पर की गई। मृद्पात्रों के निर्माण की प्रक्रिया मध्य पाषाण युग के अन्तिम चरण से प्रारम्भ हो गयी थी। प्रारम्भ में मृद्पात्र हाथ से बनाये जाते थे तथा मिट्टी को बांस की टोकरी के ऊपर रखकर उसी के अनुरूप मिट्टी को आकार देते थे और फिर उसे धूप में सुखा कर प्रयोग करते थे। नवपाषाण काल के आते-आते मृद्पात्रों को विभिन्न आकार दिए गए, जैसे कड़ाही, मटके और खाने के बर्तन इत्यादि। लगभग चौथी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के पश्चात हिन्द महासागर के किनारे कई नदीय सभ्यताओं का विकास हुआ; उनमें सिन्धु सभ्यता का विकास सिन्धु-सरस्वती नदियों के मध्य हुआ तथा यह संसार की सबसे अधिक क्षेत्र में फैली हुई सभ्यता थी। इस सभ्यता के समय मृद्पात्रों का अधिकतम विकास हुआ। मृद्पात्रों को चाक के ऊपर बनाया जाता था तथा उन्हें अतिसुन्दर रंगों से चित्रित किया जाता था। अंततः उन्हें सुखाकर आवां में पकाया जाता था। प्रस्तुत लेख में प्राचीन भारत की मृद्पात्र परम्पराओं की विस्तृत चर्चा की गयी है।

पुरातत्व के अध्ययन की शुरुआत मृद्पात्रों से की जाती है तथा मृद्पात्रों के अध्ययन को पुरातत्व का प्रारंभिक चरण भी कहा जाता है। मानव ने जब गुफा से निकलकर नदियों, झीलों और तालाबों के किनारों को अपना आवास स्थल बनाया और भोजन इत्यादि इकट्ठा किया तो उसे कुछ ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता हुई जिससे वह भोजन को पकाकर खा सके और उसे सुरक्षित रख सके। उसकी इसी आवश्यकता ने संभवतः मिट्टी को एक आकार देने की प्रेरणा दी। फलतः मृद्पात्र बनाने की प्रकिया का जन्म हुआ जिसने भविष्य में मानव सभ्यता के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

नवपाषाण कालीन मृद्भाण्ड परम्परा

नवपाषाण काल में हस्त-निर्मित मृद्भाण्डों का प्रचलन बहुत अधिक था। धूसर पात्र-परम्परा (grey ware), घर्षित धूसर (burnished grey ware), काली घर्षित पात्र-परम्परा (black burnished ware) तथा लाल रंग के मृद्भाण्ड मुख्यतः प्रचलित थे। नवपाषाणकाल के प्रारम्भिक चरणों के बर्तन अच्छी तरह तैयार मिट्टी से निर्मित नहीं हैं। ये भली-भांति पके भी नहीं हैं। इनकी पेंदी में चटाई की छाप का भी अलंकरण मिला है। कुछ पुरास्थलों से डोरी छाप मृद्भाण्ड (cord-impressed pottery), खुरदरे मृद्भाण्ड (rusticated ware), चमकाये मृदभाण्ड (burnished ware) मिले हैं। डोरी-छाप मृद्भाण्ड इस नए पाषाणिक संस्कृति के विशिष्ट मृद्भाण्ड प्रतीत होते हैं। इनकी बाहरी सतह पर डोरी अथवा बटी हुई रस्सी की छाप मिलती है। इस वर्ग के मृद्भाण्ड हल्के लाल रंग तथा अधिकांशतः मोटी गढ़न (thick fabric) के हैं। प्रमुख पात्र-प्रकारों में छिछले एवं गहरे कटोरे, टोंटीदार कटोरे (spouted bowls) तथा घड़े विशेष उल्लेखनीय हैं। खुरदरे मृदभाण्डों का रंग भी हल्का लाल है लेकिन इनके बाहरी भाग विशेषकर निचले हिस्से को जानबूझ कर खुरदरा बनाया गया है। इस श्रेणी के वर्तनों को आड़े-तिरछे तथा अंगुष्ठ-नख डिजाइनों से अलंकृत किया गया है। विविध प्रकार के कटोरे, छिछले तसले, तश्तरियां, चौड़े मुंह की हांडियां तथा घड़े प्रमुख पात्र-प्रकार हैं। चमकाये गए मृद्भाण्ड की श्रेणी के बर्तन की भीतरी एवं बाहरी सतहों को पकाने के पूर्व किसी चीज से रगड़ कर चमकाया गया है। लाल एवं काले दोनों ही प्रकार के मृद्भाण्ड इस श्रेणी में मिलते हैं। कटोरे, तश्तरियां, तसले तथा घड़े प्रमुख पात्र प्रकार मिलते हैं। दक्षिण भारत की नवपाषाण संस्कृति के स्थलों से धूसर एवं लाल रंग के मृद्भाण्ड मिलते हैं। पकाने के बाद मिट्टी के बर्तनों पर अलंकरण भी किया जाता था। ब्रह्मगिरि, मास्की एवं पिकलीहल से चित्रकारी से युक्त मृद्भाण्ड के ठीकरे मिले हैं। चित्रित अभिप्रायों में रेखांकितियां प्रमुख है जिन्हें पकाने के बाद बैंगनी रंग से बनाते थे। सलेटी रंग के बर्तनों पर गैरिक रंग से पट्टी (band) बनाते थे। कभी-कभी बर्तन की बाहरी सतह को रगड़ कर चमकाया जाता था। प्रमुख पात्र प्रकारों में तश्तरियां, कटोरे, घड़े तथा बर्तनों के ढक्कन आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

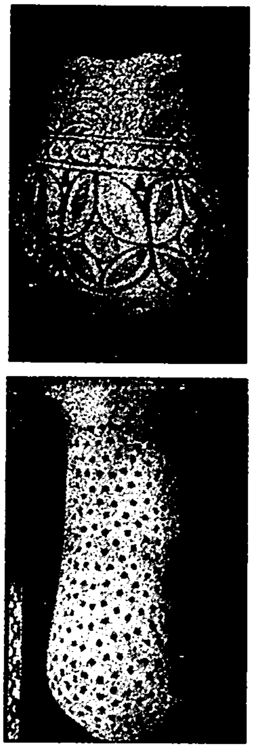

चित्र सं. 2 : लोथल से प्राप्त हड़प्पा कालीन मृद्भांड

बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा एवं उत्तरपूर्व राज्यों के नवपाषाणिक पुरास्थलों से हस्त-निर्मित एवं चाक पर वने मृद्भाण्ड मिलते हैं। प्रमुख मृद्भाण्ड लाल, सलेटी तथा कृष्ण लोहित हैं। कुछ पात्रों को पकाने के पूर्व चमकाया गया था। सलेटी एवं कृष्ण-लोहित मृद्भाण्डों में पकाने के बाद गैरिक रंग की चित्रकारी की गयी थी। अलंकरण-अभिप्रायों में पांच से सात तिरछी रेखाएं, संकेन्द्रिक अर्द्धवृत्त एवं वृत्त, लहरिया रेखाएं आदि प्रमुख हैं। चिपकवां (applique) तथा उत्कीर्ण अलंकरण वनाने की भी परम्परा थी। प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरे, तसले, कलश, घड़े और टोंटीदार बर्तनों का उल्लेख किया जा सकता है। उत्तरपूर्व क्षेत्र में स्थित दओजली हैडिंग के उत्खनन से भूरे रंग के मृद्भाण्ड मिले हैं। इस प्रकार के मृद्भाण्डों के निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी भली-भांति गुँथी हुई नहीं है। वनस्पतियों के रेशों (fibres) को सालन के रूप में इस्तेमाल किया गया है। बर्तन मोटे तथा मध्यम गढ़न के मिलते हैं जो भली-भांति पकाये गए नहीं प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के बर्तनों की बाह्य सतह पर डोरी या टोकरी की छाप अंकित मिलती है। लाल रंग के मृद्भाण्ड चाक पर बनाए गए हैं। इनकी मिट्टी भी अपेक्षाकृत अच्छी तरह से तैयार की गई है तथा ये ठीक से पके हुए भी हैं। लाल रंग के मृद्भाण्डों के पात्र-प्रकारों के सम्वंध में निश्चित रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है।

आद्यऐतिहासिक मृद्भाण्ड परम्परा

सिन्धु सभ्यता भारत में इस युग की प्रमुख संस्कृतियों में से एक है। इसके अलावा सिन्धु सभ्यता पूर्व संस्कृतियां (pre-Harappan) और सिन्धु सभ्यता पश्चात ताम्रपाषाणिक संस्कृतियां प्रमुख हैं। सर्वप्रथम सिन्धु सभ्यता पूर्व के मृद्भाण्डों की विशेषताओं का उल्लेख करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के मध्य दशकों में कई ऐसे पुरा- स्थलों की खोज सिन्ध, पंजाब तथा उत्तरी राजस्थान के क्षेत्रों में की गई है, जहां पर सिन्धु सभ्यता के नीचे स्थित स्तरों से एक विशिष्ट प्रकार के पुरावशेष उत्खनन के द्वारा प्राप्त हुए हैं। ऐसे पुरास्थलों में सिन्ध में कोटदीजी, पंजाब में हड़प्पा और उत्तरी राजस्थान में स्थित कालीबंगा का उल्लेख किया जा सकता है।

कोटदीजी से प्राप्त मृद्भाण्ड भली-भांति तैयार मिट्टी से बने हैं। पतले एवं सुन्दर मृद्भाण्डों की पृष्ठभूमि गुलावी से लाल, काले, भूरे एवं सफेद रंगों से बर्तनों की बारी (rim) तथा गर्दन के पास पट्टियां बनाई गई हैं और लहरदार रेखाओं को मिलाकर पात्रों

पर अलंकरण बनाए गए हैं। इन्हीं से कालान्तर में मत्स्य-शल्क (fish-scale) डिजाइन का विकास हुआ जिनका अंकन बाद में सिन्धु पात्र-परम्परा में मिलता है। प्रमुख पात्र-प्रकारों में बिना बारी वाले तथा बारी युक्त घड़े, कटोरे, साधार तश्तरियां आदि प्रमुख हैं। हड़प्पा से प्राप्त इस काल के मृद्भाण्डों पर लाल या गहरे बैंगनी रंग का लेप था और ऊपरी सतह सादी थी। आड़ी-काली धारियों और लटकन के बने अलंकरण बारी के पार्श्व तक सीमित मिलते हैं। कालीबंगा से प्राप्त अधिकांश मृद्भाण्ड चाक-निर्मित एवं पतली गढ़न के हैं। इनका रंग लाल एवं गुलाबी है तथा इन पर काले और यदा-कदा सफेद रंग से चित्रकारी की गई है। मृद्भाण्डों पर सँजोए गए प्रमुख अलंकरण-अभिप्रायों में चौखानेदार त्रिकोण, मूँछ के आकार के द्विपट्ट, मत्स्य-शल्क, पेड़-पौधे, तितली, बिच्छू, मछली, बतख, हिरन, जंगली बकरे और सांड आदि (चित्र सं. 1) हैं। प्रमुख पात्र-प्रकारों में पेंदीदार और सँकरे मुँह के कलश, वर्तुलाकार एवं चपटी पेंदी के घड़े, छोटे तथा बड़े आकार के मटके, गहरे कटोरे, सपाट कटोरियाँ, साधार तश्तरियां, तसले, ढक्कन आदि उल्लेखनीय हैं। कालीबंगा के सिन्धु सभ्यता पूर्व मृद्भाण्डों को उनके आकार-प्रकार एवं अलंकरण-अभिप्रायों के आधार पर पांच वर्गों में विभाजित किया गया है।

कोटदीजी से प्राप्त मृद्भाण्ड भली-भांति तैयार मिट्टी से बने हैं। पतले एवं सुन्दर मृद्भाण्डों की पृष्ठ-भूमि गुलाबी से लाल, काले, भूरे एवं सफेद रंगों से बर्तनों की बारी तथा गर्दन के पास पट्टियां बनाई गई हैं और लहरदार रेखाओं को मिलाकर पात्रों पर अलंकरण बनाए गए हैं। इन्हीं से कालान्तर में मत्स्य-शल्क डिजाइन का विकास हुआ जिनका अंकन बाद में सिन्धु पात्र-परम्परा में मिलता है।

सिन्धु सभ्यता की मृद्भाण्ड परम्परा

सिन्धु सभ्यता अपने समकालीन संसार की सभी सभ्यताओं से अधिक क्षेत्र में फैली हुई थी। इसका विस्तार उत्तर में मांडा (जम्मू कश्मीर) से लेकर दक्षिण में दायमाबाद (महाराष्ट्र) तक तथा पश्चिम में सुतकाजेन-डोर (पाकिस्तान) से लेकर पूर्व में आलमगीरपुर (उत्तर प्रदेश) तक फैला हुआ है। भारत में प्रमुख उत्खनित सिन्धु सभ्यता के पुरास्थलों में कालीबंगा, लोथल, धोलावीरा, सुरकोटडा, बनावली, राखीगढ़ी, रोपड़, रंगपुर, कुन्तासी, बगसरा, आलमगीरपुर और कुडाल प्रसिद्ध है। सिन्धु-सभ्यता के अपनी समकालिक सभ्यताओं से व्यापारिक सम्बन्ध थे। इसकी पुष्टि मेसोपोटामिया तथा खाड़ी देशों से प्राप्त सिन्धु सभ्यता की मुहरों, मनकों एवं मृद्भाण्डों से होती है।

इस सभ्यता के मृद्भाण्ड अच्छी तरह से तैयार की गयी मिट्टी से बने चाक-निर्मित हैं तथा अधिकांश को भली-भांति आवें में पकाया गया था। आवें सम्भवतः बस्ती के बाहर होते थे लेकिन सिन्धु सभ्यता के अन्तिम चरण में मोहनजो-दड़ो में नगर के अन्दर वृत्ताकार आवें मिले हैं। मृद्भाण्ड मुख्यतः लाल अथवा गुलाबी रंग के हैं जिनके ऊपर लाल रंग का चमकदार लेप किया गया है। चित्रित एवं सादे दोनों प्रकार के पात्र मिलते हैं लेकिन अनलंकृत पात्रों का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। अधिकांश अलंकरण-अभिप्राय काले रंग से सँजोये गए हैं। परन्तु कभी-कभी सफेद एवं हरे रंगों का भी प्रयोग किया गया है। त्रिभुज, वृत्त, वर्ग आदि ज्यामितीय आकृतियों, वनस्पतियों और पशु-पक्षियों का मुख्यतः अंकन किया गया है। मानवाकृतियों का चित्रण अत्यल्प है। वनस्पतियों में पीपल, खजूर, ताड़, नीम और केले का अंकन मिलता है। पशुओं में वृषभ, हिरन, बारहसिंघा और पक्षियों में मोर, बतख एवं सारस के चित्र मिले हैं। जल-जीवों में मछली का चित्रण विशेष लोकप्रिय रहा है। कतिपय पात्रों की बाहरी सतह पर ठप्पा लगाया गया है। सिन्धु लिपि के अक्षरों से मिलते-जुलते आकार इन ठप्पों की छाप में मिलते हैं। उत्कीर्ण अलंकरण अत्यल्प संख्या में मिलते हैं। प्रमुख पात्र-प्रकारों में साधार तश्तरियों, बेलनाकार बहुल छिद्रित पात्र (perforated jar), नुकीले आधार वाले चषक या कुल्हड़, लम्बे आकार के मर्तबान, साधारण थालियों, हत्थेदार प्याले, कलश, घड़े, मटके, नांद, तसले, घुण्डीदार ढक्कन आदि की गणना की जा सकती है। जामदानी, छिछली थालियां, नुकीले आधार वाले चषक और छिद्रित पात्र सैंधव सभ्यता के विशिष्ट मृद्भाण्ड (चित्र सं. 2 एवं 3) हैं। इस सभ्यता की प्रमुखता यह है कि प्रत्येक पुरास्थल से एक ही तरह के मृद्भाण्ड मिलते हैं। सिन्धु सभ्यता के पतन के पश्चात गुजरात के रंगपुर, लोथल, प्रभासपाटन, रोझदी एवं सुरकोटडा आदि पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त मृद्भाण्डों के ठीकरों से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में सिन्धु सभ्यता विघटित होकर चमकीले लाल रंग के मृद्भाण्डों में परिवर्तित हो गयी। सैंधव मृद्भाण्डों का प्रचलन लाल रंग के मिट्टी के इन बर्तनों के साथ-साथ किंचित काल तक चलता रहा। ऊपरी घाटी में सिन्धु सभ्यता के अन्तिम चरण में विकसित संस्कृति को प्रायः परवर्ती हड़प्पा संस्कृति कहा जाता है। इस संस्कृति के प्रमुख पुरास्थलों में पंजाब के कटपलों, नागर, दधेरी, हरियाणा के भगवानपुरा, जम्मू-कश्मीर के माण्डा, उत्तर प्रदेश के आलमगीरपुर, बड़ागांव, आमखेड़ी तथा हुलास आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन पुरास्थलों से प्राप्त मृद्भाण्डों में साधार तश्तरियों, जामदानियों, चषकों (कुल्हड़), कलशों, मटकों आदि की गणना की जा सकती है। सिन्धु सभ्यता के बेलनाकार बहुत छिद्रित मृद्भाण्ड जो सिन्धु सभ्यता की खास विशेषता माने जाते हैं,

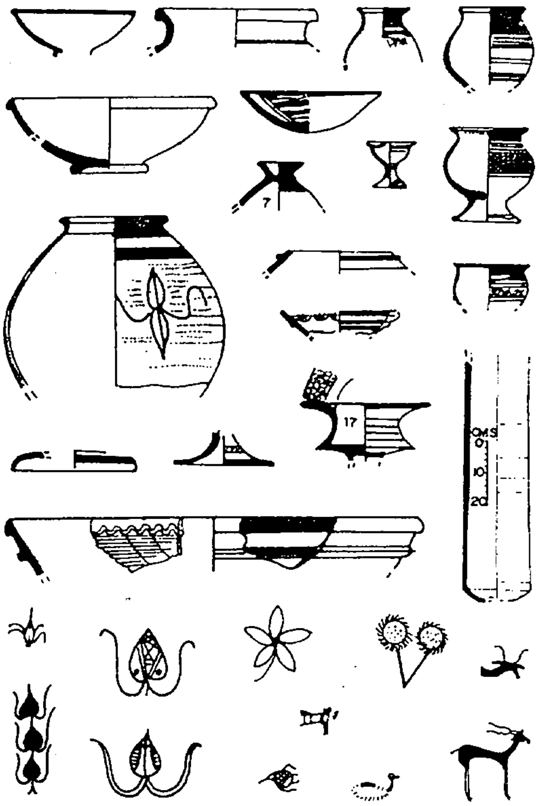

चित्र संख्या 1 : हड़प्पा पूर्व संस्कृति के मृद्भाण्डों पर चित्रकारी

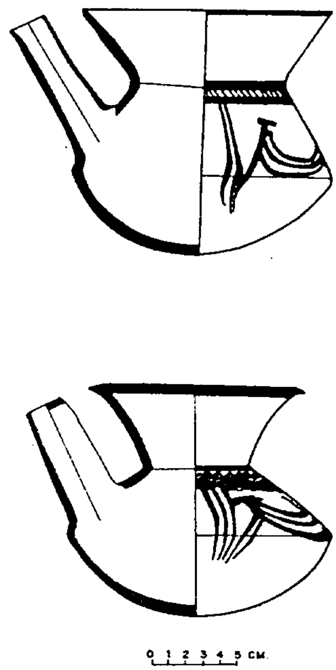

चित्र सं. 4 : ताम्रपाषाण कालीन टोंटीदार मृद्भाण्ड

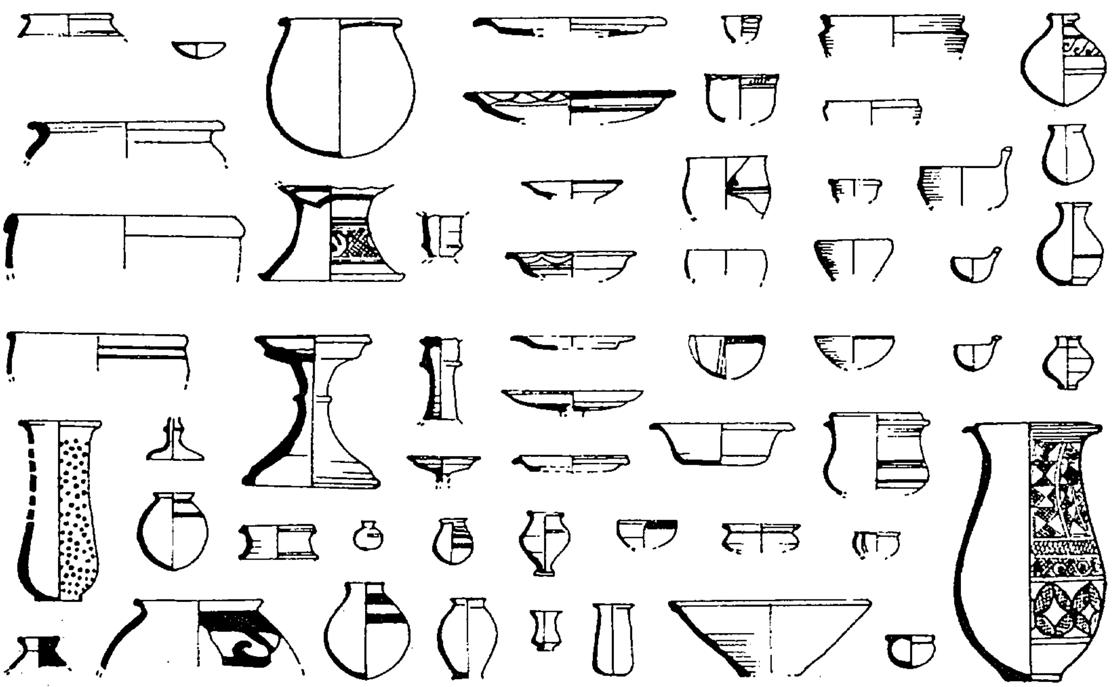

चित्र संख्या 3 : लोथल से प्राप्त कई तरह के हड़प्पा कालीन मृद्भाण्ड

परवर्ती हड़प्पा संस्कृति के पुरावशेषों में नहीं मिलते हैं। भगवानपुरा में परवर्ती हड़प्पा संस्कृति एवं चित्रित धूसर पात्र-परम्परा के बीच अतिव्याप्ति मिलती है।

ताम्रपाषाणिक मृद्भाण्ड परम्परा

पिछले कई वर्षों में भारतीय पुरातत्व के क्षेत्र में जो अन्वेषण तथा उत्खनन हुआ है उनके परिणामस्वरूप अनेक ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई है जिनका उदय द्वितीय सहस्राब्दी ईसा पूर्व में हुआ। भारतीय ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियां ग्राम्य-संस्कृतियां हैं। आर्थिक दृष्टि से इनमें आपस में कोई विशेष अन्तर नहीं है किन्तु प्रत्येक ताम्र-पाषाणिक संस्कृति की अपनी विशिष्ट परम्परा है। कुछ महत्वपूर्ण ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियों की मृद्भाण्ड परम्परायें निम्नलिखित हैं।

कायथा ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रमुख मृद्भाण्डों में पतली गढ़न, भूरे रंग के पात्र हैं जिनकी बारी से लेकर गर्दन तक अथवा यदा-कदा सम्पूर्ण ऊपरी सतह तक लाल अथवा भूरे रंग का गाढ़ा प्रलेप मिलता हैं। इसी प्रलेप के ऊपर बैंगनी रंग के रेखाचित्र बने हुए प्राप्त होते हैं। प्रमुख पात्र-प्रकारों में हांडियों, तसलों, कटोरों, घड़ों तथा संग्रह के लिए प्रयुक्त मटकों का उल्लेख किया जा सकता है। अधिकतर पात्रों की पेंदी में वलयाकार आधार मिलता है। एक अन्य पात्र-परम्परा पाण्डु रंग की है जिसका निर्माण अच्छी तरह से तैयार की गयी मिट्टी से किया गया है। पात्र पतले तथा सुन्दर गढ़न के हैं। पात्रों पर लाल रंग से चित्रण-अभिप्राय सँजोए गए हैं। प्रमुख ज्यामितीय अलंकरणों में छल्ले, वंदनवार, जालीदार हीरक एवं तिरछी रेखायें आदि हैं। मध्यम आकार के लोटों के अतिरिक्त घड़े तथा तसले अन्य प्रमुख प्रकार हैं। इसके अलावा एक अन्य पात्र-परम्परा अनलंकृत लाल रंग की है। जिसमें किसी प्रकार के प्रलेप या घोल का प्रयोग नहीं किया गया है। लहरदार तथा रेखांकन युक्त सीढ़ियां, हरिक एवं त्रिअरी आदि आकृतियां बर्तनों के केवल कंधे के आस-पास आरेखित मिलती हैं। कटोरे एवं तसले प्रमुख पात्र हैं। एक अन्य ताम्रपाषाणिक संस्कृति जिसका विकास राजस्थान में हुआ, अहाड़ नाम से प्रसिद्ध है। इस संस्कृति के लोग कई तरह की पात्र परम्पराओं का प्रयोग करते थे। इनमें श्वेत रंग से चित्रित कृष्ण-लोहित पात्र-परम्परा को अहाड़ संस्कृति की विशिष्ट मृद्भाण्ड परम्परा माना जाता है जिसके पात्रों में रेखीय और ज्यामितीय आकृतियों के अलंकरण-अभिप्राय अधिकतर अंकित मिलते हैं। अन्य पात्र-परम्पराओं में पाण्डु, कृष्ण-लोहित, चमकीली धूसर पात्र-परम्परा तथा लाल रंग की मृद्भाण्ड परम्परा आदि का उल्लेख किया जा सकता है। कृष्ण-लोहित पात्र-परमपरा में कटोरे सबसे अधिक मात्रा में मिलते हैं। धूसर पात्र-परम्परा में गोल आकार के घड़े, तसले, साधार तश्तरियां और ढक्कन प्रमुख पात्र-प्रकार हैं। लाल रंग की पात्र-परम्परा में घड़े, कटोरे, तश्तरियां और साधार तश्तरियां मिलती हैं। महाराष्ट्र प्रान्त में एक अन्य ताम्रपाषाणिक संस्कृति का विकास हुआ जिसे जोर्वे-निवासा के नाम से जाना जाता है। इस संस्कृति की पात्र-परम्परा के अपने विशिष्ट पात्र-प्रकार चित्रण-अभिप्राय और निर्माण की एक विशिष्ट तकनीक है। पात्रों के ऊपर लाल रंग का प्रलेप मिलता है। कभी-कभी बर्तनों के ऊपर घिसकर चमकाने के भी साक्ष्य मिलते हैं। पात्रों का निर्माण अच्छी प्रकार से तैयार की गयी मिट्टी से किया गया है तथा इसमें बालू को पर्याप्त मात्रा में मिलाया गया है। अधिकांश पात्र अच्छी तरह से पके हुए हैं। सम्भवतः इन्हें पकाने के लिए एक विशेष तरह के आवें का प्रयोग किया गया होगा। इस संस्कृति के कुम्भकारों को इस बात की जानकारी अच्छी तरह से थी कि बर्तनों को अच्छी तरह पकाने के लिए कितने तापक्रम की आवश्यकता होगी। बर्तन प्रायः चाक पर बने हुए हैं लेकिन उनके कुछ हिस्सों, जैसे टोंटी आदि को हाथ से बनाया जाता था। इस पात्र-परम्परा में कई तरह के पात्र-प्रकार मिलते हैं जिनमें टोंटीदार बर्तन (चित्र संख्या: 4) कोखदार कटोरे, छोटी तथा बड़ी गर्दन वाले बर्तन, तसले, गहरे कटोरे आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त बड़े-बड़े मटकों तथा घड़ों आदि की भी गणना की जा सकती है। जोर्वे पात्रों की निष्प्रभ लाल सतह पर काले रंग में चित्रण सँजोये गए हैं। ये चित्रण-अभिप्राय आसानी से मिटाए नहीं जा सकते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बर्तनों के पकाने के पहले ही चित्रण-अभिप्राय सँजोये गए थे। अधिकांश चित्रण पड़ी रेखाओं के माध्यम से किए गए हैं। चतुर्भुज, टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं तथा त्रिभुज प्रमुख ज्यामितीय अलंकरण हैं। वनस्पति और फूल-पत्ती भी दिखलाई पड़ती हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। जानवरों का भी चित्रण मिलता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के लोगों ने मृद्भाण्ड परम्परा को उच्चतम शिखर तक पहुँचाया तथा अपनी

महाराष्ट्र प्रान्त में एक अन्य ताम्रपाषाणिक संस्कृति का विकास हुआ जिसे जोर्वे-निवासा के नाम से जाना जाता है। इस संस्कृति की पात्र-परम्परा के अपने विशिष्ट पात्र-प्रकार चित्रण-अभिप्राय और निर्माण की एक विशिष्ट तकनीक है। पात्रों के ऊपर लाल रंग का प्रलेप मिलता है। कभी-कभी बर्तनों के ऊपर घिसकर चमकाने के भी साक्ष्य मिलते हैं। पात्रों का निर्माण अच्छी प्रकार से तैयार की गयी मिट्टी से किया गया है तथा इसमें बालू को पर्याप्त मात्रा में मिलाया गया है। अधिकांश पात्र अच्छी तरह से पके हुए हैं।

सम्पन्नता को उच्च स्तर के मृद्भाण्डों द्वारा दर्शाने की कोशिश की।

लौह युग की मृद्भाण्ड परम्परा

हाल के संशोधनों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में लोहे का ज्ञान द्वितीय सहस्राब्दी की अंतिम शताब्दियों में हुआ। इस समय कई पात्र-परम्पराओं का विकास हुआ। इनमें चित्रित धूसर पात्र-परम्परा सबसे पुरानी एवं महत्वपूर्ण है। इस पात्र-परम्परा का प्रसार पंजाब, हरियाणा, उत्तरी राजस्थान और ऊपरी गंगा घाटी में विशेष रूप से मिलता है। चित्रित धूसर मृद्भाण्ड-परम्परा के पात्र सुन्दर, चिकनी मिट्टी के बने हुए प्रतीत होते हैं। बर्तन बनाने के लिए मिट्टी को अच्छी तरह गूँथकर तैयार किया जाता था। बहुसंख्यक पात्र चाक पर बने हुए हैं। प्रमुख पात्र प्रकारों में कटोरे और थालियां उल्लेखनीय हैं। पंजाब के एक पुरास्थल से प्राप्त लोटा भी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकार है। इस प्रकार यह पात्र परम्परा भोजनालय से सम्बद्ध पात्र-परम्परा प्रतीत होती है। इस प्रकार के बर्तनों पर मिलने वाले चित्रण-अभिप्रायों में खड़ी तथा पड़ी रेखाएं, तिरछी रेखाएं, बिन्दु समूह, संकेन्द्रीयवृत्त, सिगमा एवं स्वास्तिक आदि प्रमुख हैं। चित्रण-अभिप्राय अधिकांशतः बर्तनों की बाहरी सतह पर मिलते हैं लेकिन यदा-कदा भीतर-बाहर दोनों तरफ भी अलंकरण मिलते हैं। ये अलंकरण सामान्यतया हल्के रंग से बनाए गए हैं परन्तु कभी-कभी कत्थई रंग का भी प्रयोग किया गया है। बर्तनों के थोड़ा सूखने पर तथा पकाने के पहले अलंकरण सँजोए जाते थे। बर्तनों को एक विशेष प्रकार के आवें में पकाया जाता था जिसका तापमान क्रमशः कम होता जाता था। बर्तन सम तापमान पर नहीं पक पाते थे इसलिए ये प्रायः लाल रंग के न होकर धूसर रंग के हो जाते थे। इस पात्र-परम्परा के साथ-साथ धूसर पात्र-परम्परा, कृष्ण-लोहित पात्र-परम्परा तथा लाल पात्र-परम्परा के अवशेष मिलते हैं। चित्रित धूसर पात्र-परम्परा विशिष्ट एवं भोजनालय से सम्बन्धित पात्र-परम्परा थी।

दक्षिण भारत में लौहयुग की अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कृति बृहत्पाषाणिक संस्कृति के नाम से जानी जाती है। इस संस्कृति की एक महत्वपूर्ण मृद्भाण्ड परम्परा को कृष्ण-लोहित मृद्भाण्ड (Black and Red Ware) परम्परा कहते है। इस तरह के मृद्भाण्ड दक्षिण भारत की सभी बृहत्पाषाणिक समाधियों और इस संस्कृति से सम्बद्ध आवास-स्थलों पर मिलते हैं। इस मृद्भाण्ड परम्परा के पात्रों का सम्पूर्ण आन्तरिक भाग और गर्दन का भाग काले रंग का तथा शेष बाहरी भाग लाल रंग का होता है। इस प्रकार के मृद्भाण्ड सर्वप्रथम दक्षिण भारत की बृहत्पाषाणिक समाधियों के साथ उपलब्ध हुए थे अतएव प्रारम्भ में इन्हें बृहत्पाषाणिक कृष्ण-लोहित पात्र-परम्परा की संज्ञा दी गयी थी। इनके प्रमुख पात्र-प्रकारों में छोटे किनारे वाली छिछली थालियां, ऊंची बारी के गहरे कटोरे, घुण्डीदार ढक्कने, घड़े तथा मटके आदि हैं।

लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समय उत्तर भारत में एक विशिष्ट प्रकार की मृद्भाण्ड परम्परा अस्तित्व में आयी जिसे उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा (North Black Polished Ware) के नाम से जानते हैं। सर्वप्रथम इस तरह के पात्र तक्षशिला के उत्खनन से सन् 1934 में प्राप्त हुए थे। इसका प्रसार उत्तर में नेपाल में स्थित तिलौराकोट से दक्षिण में तमिलनाडु में स्थित कोरकई तक, पश्चिम में अफगानिस्तान में बेग्राम से लेकर पूर्व में बांग्लादेश में स्थित बानगढ़ तक है। इस पात्र-परम्परा के मृद्भाण्डों का निर्माण भली-भांति तैयार की गई मिट्टी से किया गया है। बर्तन समान गति से चलनेवाले चाक पर निर्मित प्रतीत होते हैं। इस परम्परा के बर्तन पतले एवं हल्के मिलते हैं, बर्तन अत्यन्त ऊँचे तापक्रम वाले आवों में पकाए गए हैं इसीलिए उनमें धातु के बने हुए बर्तनों जैसी सफाई और खनक मिलती है। इसके पात्र-प्रकार सामान्य ढंग के मिलते हैं। अन्दर की ओर मुड़े हुए अथवा सीधे किनारे वाली थालियां, सीधे और उन्नतोदर कटोरे, ढक्कन सुस्पष्ट कोखवाली हांडियां तथा छोटे आकार के कलश प्रमुख पात्र-प्रकार हैं। बहुसंख्यक पात्र काले रंग के मिलते हैं लेकिन सुनहले, रूपहले, चाकलेटी, गुलाबी एवं नीले रंग के ठीकरे मिलते हैं। प्रमुख अलंकरणों में पट्टी अथवा धारियां, बिन्दु समूह, रेखाएं, संकेंद्रित वृत्त, प्रतिच्छेदी वृत्त, अर्द्धवृत्त, लहरिया, पाश आदि हैं। अलंकरण काली, गुलाबी, पिंगल, गहरी भूरी तथा बादामी सतह पर मिलते हैं। ये सभी चित्रण गाढ़े काले रंग से किए गए हैं। चित्रित धूसर पात्र-परम्परा का इस परम्परा के चित्रण-अभिप्रायों पर प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इन चित्रणों के अतिरिक्त कुछ पात्र-खण्डों विशेषकर थाली एवं कलशों के अन्दर वृत्त, बिन्दु समूह, चक्र तथा वृषभ श्रृंग आदि की डिजाइनें ठप्पा लगाकर बनाई गई हैं। उत्तर काले चमकीले मृद्भाण्ड स्पष्टतः जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त होने वाले मृद्भाण्ड नहीं थे। यह अभिजात्य वर्ग के व्यक्तियों द्वारा मुख्यतः भोजनालय में प्रयोग में लायी जाने वाली पात्र-परम्परा थी।

उपर्युक्त मृद्भाण्ड परंपराओं के माध्यम से ही भारतीय इतिहास की संरचना हुई और कालक्रम का निर्धारण हुआ। इन मृद्भाण्डों की सहायता से ही प्राचीन भारत की आर्थिक परिस्थिति का मूल्यांकन हुआ तथा दूसरे देशों से राजनैतिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों के विषय में भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। ■